इकाई-1 पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता, भाषा और काव्यरूप

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता
  1.2.1 ऐतिहासिकता
  1.2.2 रचनाकार और रचनाकाल
  1.2.3 मूल पाठ
  1.2.4 साहित्यिक परम्परा
1.3 पृथ्वीराज रासो की भाषा
1.4 पृथ्वीराज रासो का काव्य रूप
  1.4.1 **रासो** काव्य
  1.4.2 कथानक रूढ़ियाँ
  1.4.3 चरित काव्य
1.5 सारांश
1.6 प्रश्न/अभ्यास

1.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई हिंदी काव्य-1 की पहली इकाई है। इसमें **पृथ्वीराज रासो** की प्रामाणिकता पर विचार किया गया है। इसे पढ़ने के बाद आपः

- **पृथ्वीराज रासो** की प्रामाणिकता और उसके आधारों का विश्लेषण कर सकेंगे,
- **पृथ्वीराज रासो** में प्रयुक्त भाषा से परिचित हो सकेंगे,
- इस काव्य ग्रंथ में प्रयुक्त काव्य रूपों की पहचान कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

हिंदी काव्य-1 की इस पहली इकाई में हम **पृथ्वीराज रासो** की प्रामाणिकता, भाषा और काव्यरूप पर विचार करने जा रहे हैं। चंदवरदायी कृत **पृथ्वीराज रासो** हिंदी साहित्य के आदिकाल का सर्वाधिक विख्यात, लोकप्रिय और विवादग्रस्त महाकाव्य है। 1883 में बंगाल की रॉयल एशियाटिक सोसायटी ने **पृथ्वीराज रासो** का प्रकाशन आरंभ किया। रचना के प्रकाशित होने के पहले ही इसकी प्रामाणिकता को लेकर विवाद उत्पन्न हो गया और इसका प्रकाशन रोक दिया गया। बाद में काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने इसे प्रकाशित किया। जो ग्रंथ अपने जन्म से ही विवादों से घिरा हो उसे पढ़ने से पहले इस संबंध में दृष्टि साफ हो जानी चाहिए। इसी उद्देश्य से **पृथ्वीराज रासो** की प्रामाणिकता पर विचार सबसे पहले करने का प्रयास किया जा रहा है। प्रामाणिकता के संबंध में जो मुख्य सवाल उठाए गए हैं वे इस प्रकार हैंः

1. **पृथ्वीराज रासो** का मूल रूप क्या है?
2. **पृथ्वीराज रासो** की रचना मूलतः कब की गई?
3. क्या चंदवरदायी ही मूल **पृथ्वीराज रासो** के रचयिता हैं?
4. क्या कवि चंदवरदायी इतिहास प्रसिद्ध राजा पृथ्वीराज चौहान के समकालीन थे?

प्रामाणिकता से जुड़े इन सवालों के अतिरिक्त इस इकाई में **पृथ्वीराज रासो** की भाषा और काव्यरूप पर भी विचार किया है। गौर करने की बात है कि **पृथ्वीराज रासो** की भाषा और काव्यरूप का विश्लेषण कर ही इसकी मूल कथा, संवेदना और शिल्प का पता लगाया जा सकता है। इसी डोर के सहारे हम **पृथ्वीराज रासो** के मूल अंश की खोज कर सकते हैं।

पृथ्वीराज रासो इतना लोकप्रिय क्यों हुआ? उसमें इतना प्रक्षेप क्यों किया गया? असल में, **पृथ्वीराज रासो** की लोकप्रियता में साहित्यिक के साथ-साथ युगीन परिस्थितियों का भी योगदान है। इसके कारण वह अपने युग एवं युगनायक की गाथा बनकर जातीय तथा राष्ट्रीय इतिहास की प्रबल रचना बन गई।

1.2 पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता

पृथ्वीराज रासो आदिकाल का सर्वाधिक विख्यात काव्य है। यह काव्य जितना विख्यात है उतना ही विवादग्रस्त। इस विवाद की पृष्ठभूमि से हमें परिचित हो लेना चाहिए।

पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता जाँचने के लिए विद्वानों ने उसे इतिहास की कसौटी पर कसने की कोशिश की और उन्हें निराशा हाथ लगी। जिन विद्वानों ने इसे इतिहास ग्रंथ के रूप में देखा उन्होंने तो इसे जाली ग्रंथ ठहरा दिया। इसमें कोई शक नहीं कि यदि **पृथ्वीराज रासो** में हम इतिहास ढूंढने चलेंगे तो हमें निराशा ही हाथ लगेगी। आइए, देखें कि **पृथ्वीराज रासो** को इतिहास मानकर चलने वाले विद्वान क्या सोचते हैं:

1.2.1 ऐतिहासिकता

पृथ्वीराज रासो के विषय मे जो अनुश्रुतियाँ प्रचलित हैं उनसे यह आशा रखना स्वाभाविक है कि इस काव्य से पृथ्वीराजकालीन इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ेगा। कहते हैं कि इस काव्य के रचयिता चंदवरदायी अपने आश्रयदाता पृथ्वीराज के दरबारी कवि ही नहीं उनके अंतरंग मित्र भी थे। अतएव इतिहासकारों विशेषतः पाश्चात्य प्राच्यविदों को आशा थी कि इससे 12वीं 13वीं शताब्दी के उत्तर भारत के विषय में प्रामाणिक जानकारी मिलेगी। लेकिन 1876 ई. में डॉ. बूलर नामक विद्वान को कश्मीर में **पृथ्वीराज विजय** नामक काव्य की खंडित प्रति मिली। यह काव्य भी पृथ्वीराज के जीवन पर आधारित है। डॉ. बूलर ने तुलना करके देखा कि **पृथ्वीराज विजय** में उल्लिखित घटनाएँ एवं तिथियाँ इतिहास सम्मत हैं जबकि **रासो** की इतिहास विरूद्ध।

इसके विपरीत अनेक विद्वानों ने **रासो** की प्रामाणिकता पर संदेह करने वाले तर्कों के विरुद्ध मत प्रकट किया और **रासो** की प्रामाणिकता का आग्रह किया। परिणामस्वरूप **रासो** की प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता का विवाद चल पड़ा। **रासो** को अप्रामाणिक मानने वालों के तर्क संक्षेप में इस प्रकार हैं:

1. **पृथ्वीराज रासो** के अनुसार आबू के शासक जेत और सलक थे। किंतु इनका कोई उल्लेख तत्कालीन शिलालेखों में नहीं मिलता। इतिहास सम्मत तथ्य यह है कि उस समय आबू पर धारावर्ष परमार का शासन था।

2. **रासो** के अनुसार गुजरात के राजा भीमसेन को पृथ्वीराज ने मारा था। शिलालेखों के अनुसार वह पृथ्वीराज के बाद भी जीवित था।

3. इसी प्रकार **रासो** में लिखा है कि मुहम्मद गोरी को पृथ्वीराज चौहान ने शब्दबेधी बाण से मारा था। ऐतिहासिक तथ्य यह है कि मुहम्मद गोरी 1203 ई. में गक्करों के हाथों मारा गया।

4. **रासो** में लिखा है कि पृथ्वीराज की बहन पृथा का विवाह चित्तौड़ के राजा समरसिंह से हुआ था। यह असंभव है क्योंकि राजा समरसिंह का समय 13वीं शताब्दी ई. का उत्तरार्ध है जबकि पृथ्वीराज की मृत्यु 12वीं शती ई. में ही हो गई थी।

राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार महामहोपाध्याय गौरी शंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार "इस तरह हमने जाँच कर देखा कि **पृथ्वीराज रासो** बिल्कुल अनैतिहासिक ग्रंथ है। उसमें चौहानों, प्रतिहारों और सोलंकियों की उत्पत्ति संबंधी कथा, चौहानों की वंशावली, पृथ्वीराज की माता, भाई, बहिन, पुत्र और रानियों आदि के विषय की कथाएँ तथा बहुत सी घटनाओं के संवत् और प्रायः सभी घटनाएँ तथा सामंतों आदि के नाम अशुद्ध और कल्पित हैं। कुछ सुनी सुनायी बातों के आधार पर इस बृहत् काव्य की रचना की गई है .....। भाषा की दृष्टि से यह ग्रंथ प्राचीन नहीं दीखता।" (हिंदी साहित्य उद्‌भव और विकास, हजारी प्रसाद द्विवेदी से उद्धृत)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का विचार है कि "....ऐतिहासिक तथ्यों के साथ बिल्कुल मेल न खाने के कारण अनेक विद्वानों ने **पृथ्वीराज रासो** के पृथ्वीराज के समसामयिक किसी कवि की रचना होने में पूरा संदेह किया है और 16वीं शताब्दी में लिखा हुआ एक जाली ग्रंथ ठहराया है। **रासो** में चंगेज़, तैमूर

आदि पीछे के नाम आने से यह संदेह ओर भी पुष्ट होता है।" (हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल) शुक्ल जी ने इसे परवर्ती रचना और भट्ट-भणन्त कहा।

रासो को प्रामाणिक मानने वाले विद्वानों में बाबू श्यामसुंदर दास और **रासो** के सम्पादक मोहन लाल विष्णु लाल पंड्या उल्लेखनीय हैं। बाबू श्यामसुंदर दास इसे काव्य ग्रंथ मानकर इसे ऐतिहासिक तथ्यों की कसौटी पर कसे जाने को उचित नहीं मानते। पंड्या जी ने तो इसकी तिथियों को इतिहास-सम्मत सिद्ध करने के लिए एक संवत् - आनंद संवत् की कल्पना कर डाली। पंड्या जी के अनुसार **रासो** के उल्लिखित संवतों में विक्रमसंवत् से सर्वत्र 90-91 वर्षों का अंतर पड़ता है। इसका कारण यह है कि **रासो** की उल्लिखित तिथियाँ विक्रमसंवत् की नहीं आनंद संवत् के अनुसार हैं। अपने पक्ष के समर्थन में उन्होंने **रासो** के इस दोहे को प्रस्तुत किया:

एकादश सै पंचदह विक्रम साक अनंद
तिहि रिपुजय पुरहरन को भए पृथिराज नरिंद ।

उनके मतानुसार 'विक्रम साक अनंद' का अर्थ है - 90 (नब्बे) । अ का अर्थ शून्य और नंद का अर्थ नौ। अर्थात 91विक्रम संवत् में से 90 वर्ष घटा देने से 'अनंद संवत्' बनते हैं। (हिंदी साहित्य का इतिहास, रामचंद्र शुक्ल के आधार पर)

पंड्या जी के इस विचार पर विद्वानों ने संदेह प्रकट किया और आनंद संवत् की धारणा मान्य नहीं हुई।

1.2.2 रचनाकार और रचनाकाल

अब यह तय हो गया है कि **पृथ्वीराज रासो** इतिहास ग्रंथ नहीं है काव्य–ग्रंथ है। परंतु प्रामाणिकता और अप्रामाणिकता का विवाद इस प्रश्न से भी जुड़ा है कि कवि चंदवरदाई पृथ्वीराज के समकालीन थे या उन्होंने बाद में **पृथ्वीराज रासो** की रचना की।

इस काव्य का रचनाकाल और भी विवादास्पद है। ओझा जी ने इसका रचनाकाल 16वीं शताब्दी अनुमानित किया था। शुक्ल जी इसे पृथ्वीराज चौहान के समय का काव्य नहीं मानते। पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी का विचार है कि **रासो** का वर्तमान रूप अधिक से अधिक सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में ही प्राप्त हुआ होगा। **पृथ्वीराज रासो** के एक महत्वपूर्ण सम्पादक डॉ. माताप्रसाद गुप्त के अनुसार सभी दृष्टियों से **पृथ्वीराज रासो** की रचना सं. 1400 के लगभग हुई मानी जा सकती है, इससे पूर्व नहीं।

विद्वान् **रासो** को तो अप्रामाणिक मान ही चले थे, इस बात में ही संदेह करने लगे थे कि चंद नामक कोई **रासो**कार कवि हुआ भी था या नहीं। इसी बीच प्रसिद्ध अपभ्रंश-विद्वान् मुनिजिनविजय जी ने संग्रह के अंश **जयचंद प्रबंध** ही में से चार ऐसे छप्पयों का अनुसंधान किया जो चंद के नाम से हैं। इनमें से तीन छप्पय **पृथ्वीराज रासो** में थोड़े बहुत परिवर्तित रूप में मिल जाते हैं। **पुरातन प्रबंध संग्रह** का संकलन 14वीं शताब्दी में हुआ था। अतएव इसमें संकलित छप्पय इसके पूर्व के होने चाहिए। इसी आधार पर मुनिजी का विचार है कि इससे प्रमाणित होता है कि चंदकवि निश्चिततया एक ऐतिहासिक पुरुष था और वह दिल्लीश्वर हिंदू सम्राट पृथ्वीराज का समकालीन और उसका सम्मानित एवं राजकवि था। उसी ने पृथ्वीराज के कीर्ति-कलाप का वर्णन करने के लिए देश्य प्राकृत भाषा में एक काव्य की रचना की थी जो **पृथ्वीराज रासो** के नाम से प्रसिद्ध हुई। (पृथ्वीराज रासउ सं. डॉ. माता प्रसाद गुप्त पृ. 164 से उद्धृत)

इन चार छप्पयों के मिल जाने से यह निश्चित हो गया कि (1) 14वीं शती के पूर्व चंद नामक कोई कवि हुआ था। (2) उसने पृथ्वीराज चौहान पर काव्य रचा था और (3) वर्तमान रूप में प्राप्त **रासो** में चंद की रची हुई अनेक पंक्तियाँ थोड़े बहुत परिवर्तित रूप में मौजूद हैं।

इस जानकारी से नया प्रश्न यह खड़ा हुआ कि वर्तमान रूप में प्राप्त **रासो** का मूल रूप क्या था, उसमें कितना प्रक्षेप किया गया है?

1.2.3 मूल पाठ

पृथ्वीराज रासो के चार पाठ मिलते हैं (1) बृहत् (2) बृहत्तम (3)लघु और (4) लघुतम। लघुतम लघु में, लघु, बृहत् में और बृहत् बृहत्तम में प्रायः अंतर्भुक्त है। **रासो** का मूल रूप क्या था, इस विषय पर विद्वानों ने पर्याप्त माथापच्ची की है।

आचार्य शुक्ल ने वर्तमान रूप में प्राप्त, अर्थात काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित पाठ को 'भट्ट भर्णत' कहा था। उनके अनुसार "अधिक संभव यह जान पड़ता है कि पृथ्वीराज के पुत्र गोविंदराज या उनके भाई हरिराज अथवा इन दोनों में से किसी के वंशज के यहाँ चंद नाम का कोई भट्ट कवि रहा हो जिसने उनके पूर्वज पृथ्वीराज की वीरता आदि के वर्णन में कुछ रचना की हो। पीछे जो बहुत सा कल्पित भट्ट-भर्णत तैयार होता गया उन सबको लेकर और चंद को पृथ्वीराज का समसामयिक मान, उसी के नाम पर रासो नाम की यह बड़ी इमारत खड़ी की गई हो।" (हिंदी साहित्य का इतिहास)

अर्थात चंद रहा भी हो तो पृथ्वीराज का परवर्ती है। उसकी पृथ्वीराजविषयक स्वल्प रचना में परवर्ती काल में बहुत कुछ जुड़ता गया है। मूलरूप स्वल्प था।

'रासो' में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि पूरा काव्य चंदवरदाई का लिखा हुआ नहीं है। जब गोरी पृथ्वीराज को बंदी बनाकर ले गया तब चंद भी वहीं पहुँचे। जाते समय उन्होंने रासो की प्रति अपने पुत्र जल्हण को सौंपी और कहा कि इसे पूरा करना:

पुस्तक जल्हन हत्थ दै चलि गज्जन नृप-काज

कविराज मोहनसिंह का विचार है कि रासोकार ने ही एक ऐसा संकेत दे दिया है जिससे हम रासो के मूल रूप का निश्चय कर सकते हैं। रासो में एक दोहा इस प्रकार है !

छंद प्रबंध कवित्त यति साटक गाह दुहत्थ।
लघु गुरू मंडित खंडियह पिंगल अमर भरत्थ।।

अर्थात कवित्त, साटक, गाहा, दोहा नामक छंद प्रबंध में हैं। यह प्रबंध खंड लघु गुरू से मंडित है और पिंगलाचार्य, संस्कृत काव्य एवं भरत के अनुसार छंदो का प्रयोग है। (देखिए, हिंदी साहित्य उद्‌भव और विकास - पृथ्वीराज रासो)।

निष्कर्ष यह कि मूल रासो में कवित्त, साटक, गाहा और दोहा - इन्हीं छंदों का उपयोग किया गया था। रासो के मूलरूप को निश्चित करने की पद्धति यह होनी चाहिए कि इन चारों छंदों में रचित पंक्तियों को रखकर बाकी छंदों को प्रक्षिप्त मान लिया जाए।

दिक्कत यह है कि इस बात को कैसे मान लिया जाए कि परवर्ती काव्य के प्रक्षेप इन चार छंदों में न किए गए होंगे। क्या प्रक्षेप करने वालों ने इन छंदों को छोड़कर प्रक्षेप किया होगा? संभवतः इसीलिए कविराज मोहनसिंह के इस विचार को मान्यता नहीं मिली।

1.2.4 साहित्यिक परम्परा

हजारीप्रसाद द्विवेदी ने पृथ्वीराज रासो के मूल रूप का संधान आदिकाल की साहित्यिक परंपरा और काव्य एवं कथानक रूढ़ियों के आधार पर करने का रास्ता सुझाया है। उनका अनुमान है कि "रासो के वर्तमान रूप को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि मूल रासो में भी शुक और शुकी के संवाद की योजना रही होगी। मेरा अनुमान है कि इस मामूली से इंगित को पकड़कर हम मूल रूपों के कुछ रूप का अंदाज़ा लगा सकते हैं।"

वर्तमान रूप में प्राप्त रासो में अनेक स्थलों पर शुक-शुकी संवाद से कथा का उपक्रम है। मध्यकालीन प्रबंध काव्यों में कथा का प्रारंभ प्रायः दो पात्रों के संवाद के माध्यम से किया जाता है। रासो में अनेक स्थलों पर शुक-शुकी संवाद की योजना है:

सुकी कहै सुक संभरौ कहौ कथापति प्रान
पृथु भोरा भीमंग पहु किये हुअ वैर वितान
जंपि सुकी सुक पेम करि आइ अंत जो बत्त
इंछिनि पिथ्यह व्याह विधि सुख्ख सुनंते गत्त
पुच्छ कथा सुक कहो समहं गंध्रवी सुप्तेमहि
स्रवन मंमि संजोगि राज सम धरी सुनेमहि

(संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, सं. हजारी प्रसाद द्विवेदी, नामवर सिंह)

मध्यकालीन प्रबंधकाव्यों में रचनाकार या वाचक बीच-बीच में स्वयं भी पात्र के रूप में सामने आते हैं। मानस में शंकर-पार्वती, काकभुशुंडि आदि पात्र के रूप में भी आते हैं। रासो में शुक-शुकी कथा कहने सुनने की भूमिका निभाने के साथ-साथ पात्र रूप में भी प्रस्तुत होते हैं। "संयोगिता और पृथ्वीराज की

प्रेम-कथा में पहले तो शुक 'नरभेष धरि साकार' पृथ्वीराज के पास चला जाता है' उधर दुजी (शुकी) भी उड़कर संयोगिता के पास जाती है।"

पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लक्षित किया है कि शुक-शुकी संवाद के रूप में **रासो** का जो रूप प्रस्तुत होता है वह काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से भी उत्तम है। पृथ्वीराज के तीन विवाहों इंछिनी, शशिव्रता और संयोगिता की कथा की योजना शुक-शुकी के संवाद के माध्यम से ही की गई है।

पृथ्वीराज रासो के अद्यतन संपादक डॉ. माताप्रसाद गुप्त **रासो** के मूल रूप पर विचार करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मूल **रासो** में उक्ति**शृंखला** और छंद **शृंखला** की पद्धति थी। उनका कहना है कि **रासो** के लघुतम पाठ में उक्ति और छंदों की यह **शृंखला** बहुत कुछ सुरक्षित है।

डॉ. माताप्रसाद गुप्त ने **रासो** के सभी पाठों का तुलनात्मक विवेचन करके उसका पाठशोधन किया है। इस प्रक्रिया के दौरान उन्होंने पाया कि **रासो** के मूल रूप में उक्ति **शृंखला** एवं छन्द **शृंखला** का निर्वाह था। उक्ति **शृंखला** का तात्पर्य यह कि:

> "यदि ध्यानपूर्वक देखा जाए तो यह दिखाई पड़ेगा कि धा. (धारणोज प्रति) में अनेक स्थलों पर एक रूपक में - प्रायः उसके अंत में जो उक्ति आई है उसकी कुछ न कुछ शब्दावली बाद वाले रूपक में- प्रायः उसके प्रारंभ में - भी है और इस प्रकार एक उक्ति **शृंखला** बनी हुई है।"
> (**पृथ्वीराज रासो**, भूमिका, डॉ. माताप्रसाद गुप्त)

जैसे एक छंद इस प्रकार है:

जो थिर रहै सु कहहुँ किन हू पूँछ तुम्ह सोइ

अगले छंद में 'थिर' शब्द मौजूद है।

थिरू बाले बल्लभ मिलन पु जउ जोवन दिन होइ

पूर्वापर छंदों में उक्तियों के समान प्रयोग को डॉ. गुप्त ने उक्ति-**शृंखला** कहा है।

डॉ. माता प्रसाद गुप्त के अनुसार यदि हम धा. (पाठ) के छंदों को लेकर पुनः ध्यान से देखें और विभिन्न पाठों का मिलान करें तो ज्ञात होगा कि अनेक छंद या रूपक एक ओर अविभक्त थे। किंतु बाद में उनको विभक्त कर बीच-बीच में नए छंद रख दिए गए, जिससे पूर्ववर्ती छंद **शृंखला** रचना में अनेक स्थलों पर त्रुटि हो गई।

डॉ. गुप्त ने **पृथ्वीराजरासउ** का जो संपादन किया है उसमें उक्ति और छंद **शृंखला** का ध्यान रखा है। उनके द्वारा संपादित पाठ लघुतम रूप के निकट है। इसमें कुल मिलाकर 12 खंड या शीर्षक हैं- मंगलाचरण, जयचंद का राजसूय यज्ञ और संयोगिता का प्रेमानुष्ठान, कयमास वध, पृथ्वीराज का कन्नौज गमन, पृथ्वीराज का कन्नौज में प्रकट होना, संयोगिता परिणय, पृथ्वीराज-जयचंद युद्ध (1) पृथ्वीराज जयचंद युद्ध (2) पृथ्वीराज संयोगिता का केलि विलास और षडऋतु, पृथ्वीराज का उद्‌बोधन, शहाबुद्दीन-पृथ्वीराज युद्ध और शहाबुद्दीन का अंत।

अब **पृथ्वीराज रासो** को पूर्णतः जाली, या भट्ट-भणन्त नहीं समझा जाता। जहाँ तक उसके मूल रूप का प्रश्न है आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी उसका निर्णय साहित्यिक परंपरा एवं काव्योत्कर्ष की दृष्टि से करना चाहते हैं और डॉ. माता प्रसाद गुप्त पाठालोचन की दृष्टि से।

1.3 पृथ्वीराज रासो की भाषा

रासो की भाषा के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद हैं। **पृथ्वीराज रासो** की भाषा पर टिप्पणी करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है: "भाषा की कसौटी पर कसते हैं तो और भी निराश होना पड़ता है क्योंकि वह बिल्कुल बेठिकाने है- उसमें व्याकरण आदि की कोई व्यवस्था नहीं। दोहों की और कुछ-कुछ कवित्तों (छप्पयों) की भाषा तो ठिकाने की है, पर त्रोटक आदि छोटे छंदो में तो कहीं कहीं अनुस्वरान्त शब्दों की ऐसी मनमानी भरमार है जैसे किसी ने संस्कृत प्राकृत की नकल की है।" (हिंदी साहित्य का इतिहास)

लंदन की रॉयल एशियाटिक सोसाइटी में एक हस्तलिखित प्रति में लिखा है: चंदवरदायी लिखित पिंगल भाषा में 'पृथुराज का इतिहास'; गार्सा द तासी ने इसे कन्नौजी बोली का काव्य कहा। (वीरकाव्य,

लेखक डॉ. उदय नारायण तिवारी) डॉ. धीरेन्द्र वर्मा **रासो** की भाषा के व्याकरणिक ढाँचे को ब्रजभाषा का मानते हैं। (संक्षिप्त पृथ्वीराज रासो, डॉ. नामवर सिंह) डॉ. दशरथ शर्मा तथा मीनाराम रंगा इसे 'प्राचीन राजस्थानी ' मानते हैं। (उपर्युक्त से उद्धृत)

डॉ. नामवर सिंह का विचार है कि "वस्तुतः अपभ्रंश के बाद प्रायः पश्चिमी भारत में दो मुख्य भाषाएँ उत्पन्न हुईं - दक्षिणी-पश्चिमी राजस्थान में डिंगल तथा पूर्वी राजस्थान और ब्रजमंडल में पिंगल। काव्य-परंपरा की दृष्टि से डिंगल में रचना करने वाले प्रायः चारण हुए और पिंगल के कृती कवि प्रायः भाट। **पृथ्वीराज रासो** पूर्वी राजस्थान में मूलतः "चंदबलिद भट्ट" द्वारा अपभ्रंशोत्तर युग में रचा गया और अनेक प्रक्षेपों के साथ अपने विभिन्न रूपांतरों में भी वह पिंगल की रचना है। (संक्षिप्त **पृथ्वीराज रासो**)

पश्चिमी भारत की किसी बोली पर आधारित भाषा मध्यदेश की परिनिष्ठित एवं काव्य भाषा रही है। प्राचीन ब्रजी, पूर्वी राजस्थानी कहने से यही बात प्रकट होती है। वस्तुतः **पृथ्वीराज रासो** मूलतः अपने रचना काल की परिनिष्ठित मध्यदेशीय काव्य भाषा में रचा गया होगा जिसका व्याकरणिक ढाँचा अनेक प्रक्षेपों के बावजूद अभी भी सुरक्षित है।

रासो की भाषा पर विचार करते समय स्वयं **रासो**कार की इस उक्ति की उपेक्षा नहीं की जा सकती जिसके अनुसार उन्होंने अपनी काव्य भाषा को "षड्भाषा पुरानं च कुरानं च कथितं मया" कहा है।

यह "षड्भाषा" एक प्रकार की उक्ति-रूढ़ि है। लेकिन यह काव्य-भाषा-विषयक गुत्थी को सुलझाती भी है। बात यह है कि काव्य-भाषा का व्याकरणिक ढ़ाँचा मूलतः तो किसी एक ही बोली या भाषा पर टिका होता है किंतु काव्य-भाषा (या परिनिष्ठित भाषा) में अनेक क्षेत्रों की शब्दावली समाहित होती है। बल्कि थोड़ा-बहुत व्याकरणिक रूप भी क्षेत्रीय बोलियों से प्रभावित हो सकता है। मध्यदेश की काव्य भाषा आजकल खड़ी बोली पर टिकी है किंतु उसमें अवधी, ब्रजी, भोजपुरी, राजस्थानी, पहाड़ी आदि बोलियों के शब्द भी समाहित हैं। यदि मैथिली क्षेत्र के कवि दिनकर खड़ी बोली में रचना करेंगे तो मैथिली का रंग आ जाना स्वाभाविक है, जैसे अज्ञेय की भाषा में पंजाबी या भवानीप्रसाद मिश्र की भाषा में मालवी। बिल्कुल यही स्थिति **रासो** की काव्यभाषा के विषय में भी समझना चाहिए। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने षड्भाषा की इस रूढ़ि पर प्रामाणिक तौर पर विचार किया है।

यद्यपि एक सामान्य साहित्यिक भाषा किसी प्रदेश विशेष के प्रयोगों तक ही सीमित नहीं रह सकती पर वह अपना ढांचा बराबर बनाए रहती है। इसी संदर्भ में उन्होंने भिखारीदास के 'काव्य निर्णय ' का निम्नलिखित दोहा उद्धृत किया जो 'षड्भाषा ' का विश्लेषण करता है:

ब्रज मागधी मिलै अमर नाग यवन भाखानि
सहज फारसी हू मिलैं षड विधि कहत बखान

अर्थात ब्रजी, मागधी, (पूर्वी) अमर (संस्कृत), नाग (प्राकृत-अपभ्रंश), यवन (तुर्की) और फारसी सहज रूप से मिलती हैं यही षडविधि (षड्भाषा) कहलाती है।

कहने का तात्पर्य यह कि जब चंद में 'षडभाषा पुरानं च कुरानं च कथितं मया' कहा तो उनका तात्पर्य छः भाषाओं में काव्य रचना का नहीं था। उनकी काव्य भाषा में 'षड्भाषा' मिली है - मध्यदेश की काव्यभाषा में अनेक क्षेत्रीय शब्दों का समावेश था यह आशय है। 'पुरानं' संस्कृत और 'कुरानं' से आशय तुर्की, अरबी, फारसी से होना चाहिए।

रासो की भाषा आदिकालीन साहित्य की काव्यभाषा है। आदिकाल को संधिकाल कहा जाता है। उसकी काव्यभाषा में क्षीयमाण अपभ्रंश की भाषाई प्रवृत्तियों और उदीयमान आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओं का मेल है। अपभ्रंश की प्रवृत्तियाँ पूरी तरह समाप्त नहीं हुई हैं और आधुनिक भारतीय भाषाएँ पूर्णतः प्रतिष्ठित नहीं हुई हैं। किंतु **रासो** में पुरानी हिंदी का स्वरूप झलकने लगता है।

पुरानी हिंदी अपभ्रंश से मिलती-जुलती होने पर भी तीन प्रवृत्तियों के कारण अपभ्रंश से भिन्न एवं विशिष्ट हो जाती है। ये प्रवृत्तियाँ हैं - (1) क्षतिपूरक दीर्घीकरण (2) परसर्गों के प्रयोग की बहुलता और (3) तत्सम शब्दों का पुनर्प्रचलन- **क्षतिपूरक दीर्घीकरण** जैसे अज्ज का आज

उदाहरण - कलि मज्झिल जग्गु को करइ आज

परसर्गों के प्रयोग की बहुलता - एक ही पंक्ति में 'के' 'ते', 'से' का प्रयोग

उदाहरण - ससि के मुख तें अहि से निकसे।

तत्समशब्दों का पुनर्प्रचलन : जैसे ब्रह्मांड
संकियं ब्रह्म ब्रहमांड गहियं

पृथ्वीराज रासो की भाषा में अपभ्रंश और पुरानी हिंदी दोनों की भाषाई प्रवृत्तियों का मेल है।

रासो में शब्दों का बहुविधि प्रयोग है - धर्म, धम्म भी हो सकता है और ध्रम्म भी । यह बहुत कुछ तो कवि की ओर से ली जाने वाली छूट है। इस छूट की भी परंपरा है। तुलसीदास जैसे कवि भी 'लसित लल्लाट ' पर लिखते हैं; कासी मग सुरसरि क्रमनासा (कर्मनाशा) । दूसरे, जैसा कि बीम्स ने अनुमान किया है यह भाषा की संक्रमणकालीन स्थिति का भी प्रभाव हो सकता है। अनुस्वार लगाकर शब्दों को छौंकने की प्रवृत्ति पद झंकार के लिए है किन्तु इतनी अधिकता कभी खीझ और कभी मनोरंजन उत्पन्न करती है।

पृथ्वीराज रासो में छंदानुरोध से लघु को गुरू और गुरू को लघु बनाने की प्रवृत्ति है जैसे कमलनु को कमलानु और आहार को अहार। अनुस्वार की अधिकता की ही तरह व्यंजन को द्वित्व बनाने की प्रवृत्ति दिखलाई पड़ती है जैसे दिष्षियत, गज्जन। रूपगठन की दृष्टि से सर्वाधिक उल्लेखनीय बात लुप्त-विभक्तिक पदों का प्रयोग है - ले सब दासि सुजान (सभी सुजान दासियों को लेकर)। पृथ्वीराज **रासो** के शब्द-समूह में सर्वाधिक संख्या तद्भव शब्दों की है। इसके पश्चात् संस्कृत और फिर फारसी आदि के शब्दों की। कनवज्ज समय (लघुतम संस्करण) में कुल 3500 शब्दों का प्रयोग है। इसमें 500 शब्द तत्सम हैं 20 फारसी के, शेष तद्भव हैं, कुछ देशी शब्द भी अवश्य होंगे।

रासो के भाषा विचार की समस्याएँ हैं। सबसे प्रमुख समस्या मान्य पाठ की है जिसे भाषा-विचार का आधार बनाया जाए। इसकी भाषा पर विचार करते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि यह प्रबंध काव्य है और अपने युग के इतिहास का प्रतिनिधि काव्य है। इसमें विविध क्षेत्रों के पात्र हैं। उनकी चरित्रगत विशेषताएँ हैं। फिर भाषा की विविध स्तरीयता स्वाभाविक है। यह विविध स्तरीयता **रासो** के महत्व को बढ़ाती ही है, घटाती नहीं।

1.4 पृथ्वीराज रासो का काव्यरूप

हिंदी साहित्य के पाठकों के बीच **पृथ्वीराज रासो** को हिंदी का प्रथम महाकाव्य होने का गौरव प्राप्त है। हमारे यहाँ काव्य-भेद पर अधिकांशतः संस्कृत साहित्य को ध्यान में रखकर विचार हुआ है। **रासो** में महाकाव्य के सभी लक्षण घटित नहीं होते। उदाहरणार्थ **रासो** में छंदों का विधान संस्कृत महाकाव्य जैसा नहीं है। विभिन्न खंडों का विभाजन भी संख्या क्रम से नहीं घटनाओं के आधार पर शीर्षक में है जैसे "कनउज्ज समय" या "कैमास-वध"। वस्तुतः **रासो** की रचना संस्कृत के आचार्य काव्यशास्त्रियों द्वारा निर्दिष्ट लक्षणों के अनुसार नहीं हुई है। काव्य-रूप की दृष्टि से **रासो** प्राकृत अपभ्रंश के प्रबंधकाव्यों की परंपरा में है, संस्कृत महाकाव्यों की परंपरा में नहीं।

पृथ्वीराज रासो में मध्यकाल में प्रचलित प्रबंध काव्यों के अनेक रूपों का सम्मिश्रण हुआ है। उसमें कथा काव्य, चरित काव्य, आख्यायिका आदि के लक्षण मिल जाएँगे। **रासो** तो वह है ही।

'कथा' की कहानी दो व्यक्तियों के संवाद के रूप में प्रस्तुत की जाती थी। इस दृष्टि से **रासो** को कथा कह सकते हैं क्योंकि उसकी कहानी शुक-शुकी एवं कवि एवं कवि-पत्नी के संवाद के रूप में प्रस्तुत की गई है। 'आख्यायिका' की कहानी का नायक कल्पित नहीं (ऐतिहासिक) होता है। संस्कृत में 'कादम्बरी' कथा मानी जाती है और 'हर्षचरित' आख्यायिका। यद्यपि 'हर्षचरित' चरित भी है। इस दृष्टि से **पृथ्वीराज रासो** को आख्यायिका भी कह सकते हैं क्योंकि नायक पृथ्वीराज कल्पित पात्र नहीं है और उसमें बाणभट्ट की भाँति चंद का भी वर्णन है। **रासो** चरितकाव्य भी है क्योंकि उसमें पृथ्वीराज का जीवन-चरित वर्णित है।

1.4.1 रासो काव्य

पृथ्वीराज रासो, रासो काव्य के रूप में विख्यात है। यहाँ हमें **रासो** काव्य के विषय में थोड़ी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। उससे **पृथ्वीराज रासो** के काव्य रूप का निर्णय करने में सहायता मिलेगी।

रासो, रासा, रास, रासउ समानार्थक शब्द हैं। इनका विकास रास नामक नृत्य से हुआ है। रास मूलतः वन्य नृत्य था। **हर्ष चरित** में रास का उल्लेख नृत्य और गान दोनों रूपों में हुआ है। अपभ्रंश के महान कवि स्वयंभु ने रास छंद का लक्षण दिया है। सो, रास नृत्य है, गान है और छंद भी। गान शब्दों से बनता है। एक बार शब्दों का आगमन हुआ तो कथा का समावेश हो गया और रास प्रबंध काव्य भी बन गया होगा। रास नृत्य से कृष्ण की रासलीला का संबंध है।

रास काव्यों की परंपरा अपभ्रंश से ही शुरू हो जाती है। मेरी जानकारी में प्राकृत भाषा में कोई रास काव्य नहीं मिलता। अपभ्रंश में **नेमिनाथ रासो, भरतेश्वर बाहुबलिरास, कछूलीरास** आदि मिलते हैं। प्रबंध काव्य हो जाने के बाद रास किसी एक ही विषय तक सीमित नहीं रह गया। यद्यपि यह सत्य है कि 11वीं शताब्दी से अपभ्रंश में रासोकाव्य की जो परम्परा प्रारंभ होती है उसमें जैन मतावलम्बी काव्य ही अधिक मिलते हैं। किंतु कालांतर में **रासो** ऐसा प्रबंध काव्य बन गया जो केवल धर्म या जैन धर्म तक ही सीमित नहीं रह गया। धार्मिक **रासो** के साथ-साथ, ऐतिहासिक, वीरतापरक, शृंगारी रासक काव्य भी लिखे गए। **पृथ्वीराज रासो** ऐतिहासिक एवं वीरतापरक **रासो** काव्य है।

आचार्य हेमचंद्र के शब्दानुशासन में रासक को गेय उपरूपक बताया गया है। "ये गेय रूपक तीन प्रकार के होते थे - मसृण अर्थात कोमल, उद्धत और मिश्र। रासक मिश्र गेय उपरूपक है। टीका में इन गेय उपरूपकों के संबंध में बताया गया है कि इनमें से कुछ तो स्पष्ट रूप से कोमल हैं, जैसे डोम्बिका। कुछ दूसरे हैं जो स्पष्ट रूप से उद्धत गेय रूपक हैं, जैसे भाणक। कुछ ऐसे हैं जिनमें मसृण की प्रधानता होती है, कुछ उद्धत भी मिल जाता है; कुछ में उद्धत कम मिला होता है, जैसे प्रस्थान; कुछ में अधिक मिला होता है जैसे शिंगटक। परंतु ऐसे भी कई हैं जिनका प्रधान रूप तो उद्धत होता है फिर भी थोड़ा बहुत मसृण का प्रवेश हो जाता है। भाणिका ऐसा ही है। फिर प्रेरण, रामाक्रीड़, रासक हल्लीसक आदि ऐसे ही रूपक हैं। सो रासक आरंभ में एक प्रकार के उद्धत प्रयोग प्रधान गेय रूपक को कहते थे जिसमें थोड़ा बहुत मसृण या कोमल प्रयोग भी मिले होते थे" (हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली 3)।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने **संदेशरासक** और **पृथ्वीराज रासो** के प्रारंभिक अंशों की समानता दिखाकर प्रकट किया है कि **पृथ्वीराज रासो** और **संदेशरासक** दोनों में रासक काव्य रूप के लक्षण मिलते हैं।

जो हो हिंदी साहित्य में **रासो** काव्यों की दीर्घ परंपरा मिलती है। डॉ. दशरथ ओझा ने अपने ग्रंथ 'हिंदी नाटकःउद्भव और विकास' में रासक काव्यों की चर्चा के प्रसंग में बताया है कि लगभग 1000 रासक काव्य मिलते हैं और इनकी रचना 19वीं शताब्दी तक हुई है।

1.4.2 कथानक रूढ़ियाँ

पृथ्वीराज रासो रासक काव्य परंपरा का सर्वाधिक विख्यात काव्य है। **पृथ्वीराज रासो** में मध्यकालीन प्रबंध काव्यों में प्रचलित अनेक कथानक रूढ़ियों का उपयोग किया गया है। कथानक-रूढ़ियों से अभिप्राय ऐसे घटना प्रसंगों से है जो कथानक को आगे बढ़ाने के लिए मध्यकालीन प्रबंध काव्यों में प्रायः इस्तेमाल किए जाते हैं। ऐसे घटना-प्रसंग एक प्रकार से इन प्रबंध रचनाओं में रूढ़ि की तरह प्रयुक्त होते हैं अतएव इन्हें कथानक रूढ़ि कहा जाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इन कथानक रूढ़ियों पर 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' में सम्यक् विचार किया है। आचार्य द्विवेदी ने जिन कथानक रूढ़ियों की सूची दी है उनमें कुछ इस प्रकार है-

1. कहानी कहने वाला सुग्गा
2. स्वप्न में प्रियदर्शन, चित्र-दर्शन, कीर्ति श्रवण से अनुराग
3. मुनि का शाप
4. रूप परिवर्तन
5. परकाय प्रवेश
6. आकाशवाणी
7. षड्ऋतु-बारहमासा
8. हंस-कपोत से संदेश कथन आदि।

रासो में - कहानी कहने वाला सुग्गा, गुण-श्रवण से अनुराग, रूप-परिवर्तन, षड्ऋतु वर्णन आदि तो हैं ही इनके अतिरिक्त, सेना-वर्णन, युद्ध वर्णन, नख-शिख वर्णन, कन्या हरण, वयस्संधि वर्णन आदि

कथानक रूढ़ियों का भी उपयोग किया गया है। कथानक रूढ़ियों के उपयोग की दृष्टि से पृथ्वीराज रासो एक भरपूर काव्य है।

1.4.3 चरित काव्य

अब तक हमने देखा कि पृथ्वीराज रासो आदिकाल की ऐसी रचना है जो मूलतः रासो काव्य है किंतु उसमें कथा, चरित, आख्यायिका आदि काव्य रूपों का भी समावेश है जिसमें कथानक रूढ़ियों का भरपूर उपयोग किया गया है।

डॉ. नित्यानंद तिवारी ने अपनी पुस्तक 'मध्यकालीन रोमांचक आख्यान' में दिखाया है कि पृथ्वीराज रासो रोमांचक आख्यान है। उसमें कथानक तो है किंतु उसमें आंतरिक गठन नहीं, उसमें अनेक परस्पर असंबद्ध कथाओं का संकलन और विस्तार है। कथाओं, घटनाओं का विकास आंतरिक घात-प्रतिघात से नहीं है, उनमें जोड़ और गांठें हैं। जोर कथनात्मकता या कहते जाने की की प्रवृत्ति पर है। चरित्र तो हैं किंतु इनकी चरित्रगत वैयक्तिक विशेषताएँ प्रायः नहीं हैं। संभवतः इसीलिए कथा के विकास के लिए कथानक रूढ़ियों की आवश्यकता पड़ती है। इन रोमांचक आख्यानों का कोई ऐतिहासिक उद्देश्य भी नहीं है। उद्देश्य होता तो इनका कथानक उद्देश्य की अंतस्सूत्रता से बंधा होता। डॉ. नित्यानंद तिवारी पृथ्वीराज रासो को 'पंवारा' मानते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि रासो की घटना-सरणि में, पृथ्वीराज के अनेक विवाहों और युद्धों में कोई तार्किक प्रवाह या अंतस्सूत्रता नहीं है। दो-चार विवाह और युद्ध रासो में और जोड़ दिए जाएँ या निकाल दिए जाएँ तो रासो के रूप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

इस सबके बावजूद, हिंदी साहित्य में रासो की प्रतिष्ठा महाकाव्य के रूप में है। वह हिंदी साहित्य के आदिकाल का ही सर्वाधिक विख्यात काव्य नहीं, हिंदी साहित्य के प्रथम महाकाव्य के रूप में भी प्रतिष्ठित है। हमें उन कारणों की भी पड़ताल करनी चाहिए जिनके आधार पर पृथ्वीराज रासो को यह प्रतिष्ठा मिली।

डॉ. नगेन्द्र कामायनी के महाकाव्यत्व पर विचार करते हुए, पाश्चात्य एवं पौरस्त्य महाकाव्यों के लक्षणों का विवेचन करने के उपरांत इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि महाकाव्यत्व का प्राण औदात्य है। (देखिए कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ) । औदात्य का आधार व्यापक संघर्ष है। भारतीय महाकाव्यों का आदर्श वाल्मीकि रामायण है और राम का आजीवन संघर्ष उसके औदात्य का आधार है। वे लोक विख्यात हैं। उनकी जीवन-कथा ही ऐसी है कि विपुल जीवन-जगत् का समावेश उनके जीवन में हो जाता है। ध्यान से देखें तो महाकाव्यों के लक्षण इस बात को ही ध्यान में रखकर निर्धारित किए गए हैं कि नायक लोक में कितना प्रतिष्ठित है, लोक से उसके जीवन-संघर्ष का कैसा संबंध है। कहने का तात्पर्य यह है कि व्यापकता एवं संघर्ष औदात्य के आधार हैं। आठ या उससे अधिक सर्गों की व्यवस्था कथा की विपुलता का लक्षण है तो एक सर्ग में एक ही छंद की व्यवस्था दूर तक कथा प्रवाह की समतल भूमि निर्धारित करती है। सर्ग के अंत में छंद परिवर्तन एक सर्ग की कथा को अगले सर्ग की कथा से जोड़ने का संकेत है।

मध्यकाल में ऐसे प्रबंधकाव्य भी लिखे गए हैं जिनमें कदम-कदम पर छंद परिवर्तित होते हैं। केशवदास की रामचन्द्रिका, विद्यापति की कीर्तिलता ऐसे ही काव्य हैं। आदिकाल के ही अपभ्रंश काव्य संदेश रासक में भी जल्दी-जल्दी छंद परिवर्तन मिलता है। पृथ्वीराज रासो भी इस दृष्टि से इन्हीं रचनाओं की कोटि में आता है।

1.5 सारांश

पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिता-अप्रामाणिकता से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर विचार करने के क्रम में आपने महसूस किया होगा कि इसे काव्य ग्रंथ मानकर चलना ही उचित है। किसी भी दृष्टि से यह इतिहास ग्रंथ नहीं है। परंतु इसमें कोई शक नहीं कि चंदवरदाई पृथ्वीराज के समकालीन थे और उन्होंने पृथ्वीराज रासो नामक चरित काव्य की रचना की।

यह भी स्मरण रखने की बात है कि विद्वानों ने इसके लघुतम पाठ को ही मूल पाठ माना है। प्रश्न यह है कि जो काव्य मूलतः लघु काव्य था और जिसे पंवारा कहा जाता है वह इतना बृहत् एवं महाकाव्य कैसे बन गया। आदिकाल की अन्य रचनाओं को पीछे धकेल कर सर्वाधिक विख्यात कैसे हो गया।

उत्तर संभवतः साहित्य से अधिक उत्तरी भारत के राजनीतिक घटना-चक्र अर्थात इतिहास में है। निस्संदेह साहित्यिक दृष्टि से **पृथ्वीराज रासो** उत्कृष्ट रचना है और चंदवरदाई सरस्वती के वरद-पुत्र हैं। किंतु इस रचना को इतिहास चक्र ने जो महत्त्व प्रदान किया उसका इसे महाकाव्य के रूप में प्रतिष्ठित करने में बहुत बड़ा योगदान है ।

पृथ्वीराज चौहान दिल्ली के सिहांसन पर विराजमान होने वाले अंतिम हिंदू शासक थे। उनका जीवन अपने-आप में चाहे ज़ितना सामान्य रहा हो, उत्तरी भारत के इतिहास में मुहम्मद गोरी के हाथों उनकी पराजय और उनका वध युगांत का प्रतीक बन गया। कन्या हरण और युद्ध आदिकालीन वीर गाथात्मक रचनाओं का प्रिय विषय है किंतु उन सभी रचनाओं के नायक पृथ्वीराज चौहान की तरह युगांत के प्रतीक-नायक नहीं बने। उत्तरी भारत की जनता के मन में ऐतिहासिक कारणों से अपने अंतिम शासक के लिए एक ललक बनी रही। इसके बाद दिल्ली के सिहांसन पर आक्रामक या उनकी संतानें बैठीं। इस ऐतिहासिक ललक ने पृथ्वीराज चौहान के जीवन को अभूतपूर्व ख्याति प्रदान की। वे जन समाज में व्याप्त होने वाली किम्वदंतियों, निजंधरी कथाओं के विषय बने, नायक बने। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कथानक रूढ़ियों पर विचार करते हुए 'हिंदी साहित्य का आदिकाल' में बताया है कि तथ्य की अपेक्षा संभावना पर अधिक बल देने से कवि नायक को निजंधरी (लेजेंडरी) बना देते हैं। यह मनोवृत्ति वस्तुतः भारतीय जन-मानस की है जो अपने नायक को आत्यन्तिकता प्रदान करता है। निरंतर प्रक्षेप इसी का परिणाम है। लोग वीरनायक को विविध रूपों में देखना चाहते हैं, उनके जीवन में संभावनाओं को अधिक से अधिक फलीभूत होते देखना चाहते हैं। **पृथ्वीराज रासो** जितना अधिक प्रक्षेप हिंदी की किसी अन्य रचना में नहीं हुआ है। इसे प्रसिद्धि का मूल्य चुकाना कह सकते हैं। लोक विख्यात शौर्य गाथाओं, रोमांचक गाथाओं के विषय में ऐसी जनश्रुतियों की व्यापकता स्वाभाविक है। हमारे स्वाधीनता संग्राम के सेनानियों के विषय में भी ऐसी किम्वदंतियाँ जन-प्रचलित थीं। इसी प्रवृत्ति का काव्य-फलन **रासो** का महाकाव्य है। आचार्य द्विवेदी के शब्दों में वह लोकचित्त की चंचल सवारी करता हुआ विकासशील महाकाव्य बना। हिदी का दूसरा विकसनशील महाकाव्य **परमाल रासो** या **आल्हा** होता अगर वह लिखित रूप में प्राप्त होता।

नायक का महत्व युगांतरकारी हो गया और लोकप्रियता के कारण प्रक्षेप होता गया तो रचना को भी महाकाव्यात्मक गरिमा प्राप्त हुई। वह अपने युग एवं युग नायक की गाथा बनकर जातीय अथवा राष्ट्रीय इतिहास की प्रबल रचना बन गई। अगली इकाई (इकाई सं.-२) में इसकी विस्तार से चर्चा की जाएगी।

इस प्रकार जो **रासो** काव्य चरित, कथा, आख्यायिका आदि के लक्षणों से युक्त एक पंवारा मात्र था वह ऐतिहासिक घटना चक्र से विकासशील प्रबंधकाव्य तो बना ही, महाकाव्यात्मक औदात्य एवं गरिमा से मंडित होकर आदिकाल का सर्वाधिक प्रसिद्ध और हिंदी साहित्य का प्रथम महाकाव्य कहलाने का अधिकारी बना।

1.6 प्रश्न/अभ्यास

1. पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिकता-अप्रामाणिता से जुड़े विभिन्न मुद्दों का विश्लेषण कीजिए।
2. पृथ्वीराज रासो में कथानक रूढ़ियों का उपयोग किस प्रकार किया गया है?
3. क्या पृथ्वीराज रासो की भाषा अपने रचनाकाल से मेल खाती है? विभिन्न मतों के आलोक में इस पर विचार कीजिए।
4. पृथ्वीराज रासो की लोकप्रियता में साहित्यिक और साहित्येतर परम्पराओं के योगदान को रेखांकित कीजिए।